Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

छत्तीसगढ़ लोक सेवा आयोग (CGPSC)

समाजशास्त्र

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: CGPM02

छत्तीसगढ़ लोक सेवा आयोग (CGPSC)

समाजशास्त्र

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 8750187501, 011-47532596
टोल फ्री : 1800-121-6260
Web : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

CGPCS DLP विषय सूची (Contents)

1.	**समाजशास्त्र : सामान्य परिचय**		**5–17**
	1.1	समाजशास्त्र का अर्थ	5
	1.2	समाजशास्त्र का क्षेत्र एवं प्रकृति	6
	1.3	समाजशास्त्र के अध्ययन का महत्त्व	11
	1.4	समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध	13
2.	**प्राथमिक अवधारणाएँ**		**18–34**
	2.1	समाज	18
	2.2	समाज के प्रकार	19
	2.3	समुदाय	22
	2.4	समिति	25
	2.5	संस्था	26
	2.6	सामाजिक समूह	27
	2.7	जनरीतियाँ एवं लोकाचार	29
3.	**व्यक्ति और समाज**		**35–64**
	3.1	सामाजिक अंत:क्रियाएँ	35
	3.2	स्थिति/प्रस्थिति और भूमिका	36
	3.3	संस्कृति	40
	3.4	व्यक्तित्व	44
	3.5	समाजीकरण	59
4.	**हिंदू सामाजिक संगठन**		**65–82**
	4.1	धर्म	66
	4.2	आश्रम	68
	4.3	वर्ण	72
	4.4	पुरुषार्थ	77

5. सामाजिक स्तरीकरण **83–95**

5.1 जाति 83

5.2 वर्ग 91

6. सामाजिक प्रक्रियाएँ **96–103**

6.1 सामाजिक अंत:क्रिया 96

6.2 सहयोग 97

6.3 संघर्ष 98

6.4 प्रतिस्पर्द्धा 100

7. सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन **104–120**

7.1 सामाजिक नियंत्रण के साधन एवं अभिकरण 104

7.2 सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ एवं कारक 110

7.3 संस्कृतीकरण 117

8. भारतीय सामाजिक समस्याएँ **121–148**

8.1 सामाजिक समस्या: अर्थ एवं परिभाषा 121

8.2 सामाजिक विघटन 129

8.3 नियमहीनता 136

8.4 अलगाव 140

8.5 विषमता 142

8.6 आत्महत्या 144

9. सामाजिक शोध एवं प्रविधियाँ **149–159**

9.1 सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य 149

9.2 सामाजिक घटनाओं/प्रघटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग 154

9.3 वस्तुनिष्ठता 157

10. तथ्य संकलन की प्रविधियाँ एवं उपकरण **160–176**

10.1 अवलोकन 160

10.2 प्रश्नावली 166

10.3 अनुसूची 168

10.4 साक्षात्कार 172

अध्याय
1

समाजशास्त्र : सामान्य परिचय (Sociology : General Introduction)

समाज सामाजिक संबंधों की एक दुनिया है, जो मानवीय अंत:क्रियाओं एवं पारस्परिक संबंधों से जुड़ा होता है। एक अनुशासन के रूप में समाजशास्त्र पश्चिमी बौद्धिक प्रवचन का एक उत्पाद है।

कालांतर में दुर्खीम, स्पेंसर, मैक्स वेबर एवं अन्य विद्वानों ने समाजशास्त्र को एक अकादमिक विज्ञान के रूप में विकसित करने हेतु अपने महत्त्वपूर्ण योगदान दिये। समाजशास्त्र की उत्पत्ति के मूल स्रोतों पर प्रकाश डालते हुए गिंसबर्ग ने लिखा है कि स्पष्ट रूप से माना जा सकता है कि समाजशास्त्र की उत्पत्ति राजनीति, दर्शन, इतिहास, विकास के जैविकीय सिद्धांत एवं उन सभी सामाजिक और राजनीतिक सुधार आंदोलनों पर आधारित है, जिन्होंने सामाजिक दशाओं का सर्वेक्षण करना आवश्यक समझा। इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन व मानवीय संबंधों की जटिलता के अध्ययन का विश्लेषण, दोनों को यथार्थता की कसौटी पर कसने के लिये समाजशास्त्र का आविर्भाव एक समाजविज्ञान के रूप में 19वीं शताब्दी में हुआ।

विभिन्न विद्वानों ने समाजशास्त्र को एक समाज-वैज्ञानिक विषय व सामाजिक विषय के रूप में अपने-अपने तरीकों से परिभाषित करने के प्रयास किये। विषयांतर्गत सार को समझने हेतु कुछ परिभाषाएँ निम्नवत् हैं-

वार्ड के अनुसार- "समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है।"

गिडिंग के अनुसार- "समाजशास्त्र समाज का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

मैक्स वेबर के अनुसार- "समाजशास्त्र वह विज्ञान है, जो कि सामाजिक क्रिया के व्याख्यात्मक बोध को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, जिससे उसकी प्रक्रिया व प्रभावों की बुद्धिसंगत व्याख्या की जा सके।"

गिंसबर्ग के अनुसार- "समाजशास्त्र मानवीय अंत:क्रियाओं और अंत:संबंधों, उनकी दशाओं एवं परिणामों का अध्ययन है।

1.1 समाजशास्त्र का अर्थ *(Meaning of Sociology)*

सोशियोलॉजी' शब्द लैटिन शब्द 'सोशियस' (Socius) एवं ग्रीक शब्द 'लोगस' (Logas) को मिलाकर बना है। सोशियस का अर्थ है समाज तथा लोगस का अर्थ है अध्ययन अथवा विज्ञान। अतएव समाजशास्त्र का शाब्दिक अर्थ 'समाज का विज्ञान' हुआ। समाजशास्त्र समूहों के व्यवहार अथवा मनुष्यों के मध्य अंत:क्रियाओं, सामाजिक संबंधों एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन है, जिनके द्वारा मानव-समूह की गतिविधियाँ संचालित होती हैं।

महान यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने कहा है कि "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।" उसका स्वभाव और आवश्यकताएँ दोनों ही उसे समाज में रहने के लिये प्रेरित करते हैं। समाज में मनुष्य का व्यवहार भौतिक एवं सामाजिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। मानव प्राचीन काल से ही अपने सामाजिक पर्यावरण का पर्यवेक्षण एवं उससे उत्पन्न समस्याओं को समझने का प्रयत्न करता रहा है, परंतु इन प्रारंभिक चरणों में मानव ने समाज का नहीं, अपितु समाज के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया, जिससे विभिन्न सामाजिक विज्ञानों, जैसे- इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीतिविज्ञान, मानवविज्ञान, मनोविज्ञान आदि का जन्म हुआ।

ये सामाजिक विज्ञान विभिन्न दृष्टिकोणों से समाज का एकांगी चित्र ही हमारे सामने रखते हैं, परंतु समाज की व्यापक एवं उपयोगिता का समग्र चित्र प्रस्तुत नहीं करते हैं। अत: एक ऐसे सामान्य विज्ञान की आवश्यकता को महसूस किया गया जो समाज का समग्र रूप में अध्ययन करे। इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु समाजशास्त्र का निर्माण हुआ।

समाजशास्त्र अनिवार्यत: और मूलत: सामाजिक संबंधों के उस ताने-बाने से संबंधित है, जिसे समाज कहते हैं। कोई अन्य विज्ञान इस विषय को अपने अध्ययन का मूल विषय नहीं बनाता। समाजशास्त्री के रूप में हम सामाजिक संबंधों में इसलिये रुचि नहीं रखते कि वे आर्थिक अथवा धार्मिक हैं, अपितु इसलिये रखते हैं कि वे सामाजिक हैं। समाजशास्त्र का केंद्रबिंदु सामाजिकता (Socialness) है। इसके अध्ययन का विषय एक मनुष्य का दूसरे मनुष्यों के साथ व्यवहार है। सामाजिक संबंधों का अध्ययन समाजशास्त्र का प्रमुख विषय है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि यद्यपि दोनों ही विज्ञानों की अध्ययन वस्तु लगभग समान है, फिर भी दोनों के दृष्टिकोणों में पर्याप्त भिन्नता है।

अत: कुछ मौलिक अंतर होते हुए भी सभी सामाजिक विज्ञान समाजशास्त्र से किसी न किसी रूप में संबंधित हैं। यही कारण है कि समाजशास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों द्वारा सम्मिलित रूप में अनेक सामाजिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, जैसे- श्रम-कल्याण की समस्या, परिवार नियोजन की समस्या, ग्रामीण पुनर्निर्माण से संबंधित समस्या आदि। चूँकि ये समस्याएँ हमारे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन से समान रूप से संबंधित होने के कारण पर्याप्त जटिल हैं और इसलिये किसी एक सामाजिक विज्ञान के द्वारा उनका पूर्ण अध्ययन संभव नहीं है।

समाज सामाजिक संबंधों का जाल है

मैकाइवर के अनुसार, समाज सामाजिक संबंधों का जाल है। ये संबंध सैकड़ों अथवा सहस्रों प्रकार के हो सकते हैं। सामाजिक संबंधों का क्या अर्थ है? क्या आग एवं धुआँ, कलम एवं स्याही, डुप्लीकेटर एवं मेज़ के बीच संबंध को सामाजिक संबंध कहा जा सकता है? स्पष्टतया नहीं, क्योंकि उनके बीच मानसिक जागरूकता का अभाव है। ऐसी जागरूकता के बिना सामाजिक संबंध का निर्माण नहीं होता। अतएव ऐसा कोई समाज भी नहीं हो सकता। सामाजिक संबंध में पारस्परिक मानसिक जागरूकता सन्निहित है। एफ.एच. गिडिंग्स (F.H. Giddings) ने कहा है, "समाज समानता की चेतना (Consciousness of the Kind) पर आधारित है।" समाज सामाजिक संबंधों का जाल तभी बनता है, जब निम्नलिखित परिस्थितियाँ विद्यमान हों-

- **समाज में समानता सन्निहित है:** समानता समाज का अनिवार्य तथ्य है। मैकाइवर का कथन है, "समाज का अर्थ सम. ानता है (Society Means Likeness)। प्रारंभिक समाज में समानता की भावना नातेदारी (Kinship) अर्थात् वास्तविक या काल्पनिक खून के रिश्ते पर आधारित थी। वर्तमान समाज में सामाजिक समानता का आधार व्यापक बन गया है, जो एक ही विश्व या राष्ट्रीयता के सिद्धांत पर आधारित है।"
- **समाज में विभिन्नता भी होती है:** यहाँ समानता की इस भावना का अर्थ यह नहीं है कि समाज में कोई भिन्नता नहीं होनी चाहिये। समाज भिन्नता पर उतना ही आश्रित है, जितना समानता पर। सभी सामाजिक व्यवस्थाओं में भिन्नताएँ सामाजिक संबंधों की पूरक हैं, उदाहरणार्थ, परिवार लिंगों की जीवशास्त्रीय भिन्नता पर आधारित है। लैंगिक भिन्नता के अतिरिक्त, अभिरुचि, हित, समर्थता की भी भिन्नता है। सामाजिक जीवन में समानता तथा भिन्नता, सहयोग तथा संघर्ष, सहमति तथा असहमति की अनंत क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है। भिन्नता समानता के अधीन होती है (Difference is Subordinate to Likeness), क्योंकि मनुष्यों की आवश्यकताएँ समान हैं, अतएव वे असमान कार्यों को करते हैं। मानवीय आवश्यकताओं की समानता सामाजिक संगठन की विभेदनशीलता के लिये अनिवार्यत: पूर्ववर्ती है।

(iii) अन्योन्याश्रितता: समानता के अतिरिक्त अन्योन्याश्रितता भी समाज-निर्माण का एक आवश्यक तत्त्व है। परिवार, जो पहला समाज है, जिससे हम सभी संबंधित हैं, स्त्री-पुरुष की अन्योन्यातिता पर आधारित है। अंतर्निभरता का क्षेत्र व्यापक होने के साथ-साथ इसके प्रकार भी अनेक हो जाते हैं जैसे- नाटो (NATO), सार्क (SAARC), यूनेस्को (UNESCO) संसार के व्यक्तियों की बढ़ती हुई अन्योन्याश्रितता के प्रमाण हैं।

- **सहयोग :** सहयोग के बिना कोई समाज जीवित नहीं रह सकता। यदि व्यक्ति सहयोग नहीं करेंगे तो उनका जीवन सुखमय नहीं हो सकता। सहयोग के अभाव में समाज का संपूर्ण ताना-बाना नष्ट हो जाएगा, परंतु सहयोग के साथ ही समाज में संघर्ष भी मौजूद है, परंतु सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिये संघर्ष औचित्य की सीमा से आगे नहीं बढ़ना चाहिये।

परीक्षोपयोगी महत्त्वपूर्ण तथ्य

- 'सोशियोलॉजी' शब्द लैटिन शब्द 'सोशियस' (Socius) एवं ग्रीक शब्द 'लोगस' (Logas) से मिलकर बना है। जहाँ सोशियस का अर्थ है- समाज तथा लोगस का अर्थ है- अध्ययन अथवा विज्ञान।
- गिडिंग के अनुसार- "समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है।"
- समाजशास्त्र के विषय-क्षेत्र को मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया गया है- (i) स्वरूपात्मक/विशिष्टतावादी संप्रदाय (ii) समन्वयवादी संप्रदाय।

- दुर्खीम ने समाजशास्त्र की विषय-वस्तु को मुख्यत: तीन भागों में बाँटा है- (i) सामाजिक स्वरूपशास्त्र, (ii) सामाजिक शरीरशास्त्र, (iii) सामान्य समाजशास्त्र।
- गिंसबर्ग ने समाजशास्त्र के अध्ययन की विषय-वस्तु को मुख्यत: चार भागों में वर्गीकृत किया है-
  - ◆ सामाजिक रूपशास्त्र ◆ सामाजिक प्रक्रियाएँ ◆ सामाजिक नियंत्रण ◆ सामाजिक व्याधिकी
- विज्ञान शब्द अंग्रेज़ी शब्द 'साइंस' (Science) का हिंदी रूपांतरण है। साइंस शब्द लैटिन भाषा के साइंसियाँ (Scientia) शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है- व्यवस्थित ज्ञान।

अति लघुउत्तरीय प्रश्न (उत्तर लगभग 30 शब्दों में दीजिये)

1. समाजशास्त्र की प्रकृति स्पष्ट कीजिये। **CGPCS (Mains) 2017**
2. समाजशास्त्र से क्या तात्पर्य है?
3. समाजशास्त्र में समन्वयवादी संप्रदाय को संक्षेप में स्पष्ट करें।
4. समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र और विषय-वस्तु में क्या अंतर है?
5. समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में अंतर को स्पष्ट कीजिये।

लघुउत्तरीय प्रश्न (उत्तर लगभग 60 शब्दों में दीजिये)

1. समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र के मध्य संबंध बताइये। **CGPCS (Mains) 2016, 2013**
2. समाजशास्त्र के विषय-क्षेत्र की संक्षिप्त विवेचना कीजिये। **CGPCS (Mains) 2012**
3. समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र में क्या अंतर है?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न (उत्तर लगभग 100/125/175 शब्दों में दीजिये)

1. समाजशास्त्र के अध्ययन के महत्त्व का उल्लेख करें।
2. "समाज सामाजिक संबंधों का जाल है।" इस कथन को विस्तार से स्पष्ट कीजिये।
3. समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में संबंध बताते हुए उनके मध्य अंतर को भी रेखांकित कीजिये।
4. दुर्खीम ने समाजशास्त्र की विषय-वस्तु को कुल कितने भागों में विभाजित किया है। प्रत्येक का विस्तार से उल्लेख करें।
5. समाजशास्त्र की ऐसी कौन-सी विशेषताएँ हैं, जिनके आधार पर हम इसे विज्ञान कह सकते हैं?

नोट: वर्ष 2018 से पूर्व परीक्षा प्रणाली में दीर्घउत्तरीय प्रश्नों के अंतर्गत 100/250/500 शब्द सीमा वाले प्रश्न पूछे जाते रहे हैं, जबकि नवीन परीक्षा प्रणाली के अंतर्गत 100/125/175 शब्दों के प्रश्न पूछे जाएंगे।

अध्याय
2

प्राथमिक अवधारणाएँ (Primary Concepts)

समाजशास्त्र में दिन-प्रतिदिन की सामान्य बोलचाल की शब्दावलियों का प्राय: प्रयोग होता रहता है जिसका लोग अपने-अपने तरीके से अर्थ लगाते हैं, लेकिन वे सामाजिक घटनाओं का सही एवं वैज्ञानिक तरीके से अर्थ नहीं लगाते हैं। इन सामाजिक घटनाओं का सही एवं वैज्ञानिक तरीके से विश्लेषण करने के लिये यह आवश्यक है कि समाजशास्त्र में प्रयुक्त विभिन्न शब्दावली तथा अवधारणाओं के अर्थ निश्चित और स्पष्ट हों। समाजशास्त्र में जिन तथ्यों एवं घटनाओं का विश्लेषण करना होता है वे प्राय: अमूर्त प्रकृति की ही होती हैं। इसके उदाहरण के रूप में सामाजिक संबंध, सामाजिक प्रक्रिया, सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक अंत:क्रिया, संस्था, प्रकार्य आदि तथ्यों को शामिल कर सकते हैं। समाजशास्त्र में हमें इन्हीं तत्त्वों का अध्ययन एवं विश्लेषण करना होता है क्योंकि इनका हमारे जीवन में काफी महत्त्व होता है। अत: सामाजिक घटनाओं को सही दृष्टि से समझने के लिये आवश्यक है कि हम समाजशास्त्र में प्रयुक्त अवधारणाओं को स्पष्टता और निश्चितता प्रदान करें और उनका सही अर्थ में प्रयोग करें।

2.1 समाज *(Society)*

भारतीय समाज एवं इसकी मुख्य विशेषताओं को ठीक ढंग से समझने के लिये हमें पहले यह समझना होगा कि समाज क्या है? समाज एक से अधिक लोगों का समूह (Group) है जिसमें सभी मानवीय क्रियाकलाप संपन्न होते हैं। मानवीय क्रियाकलापों से आशय आचरण, सामाजिक सुरक्षा, निर्वाह आदि क्रियाओं से है। दूसरे शब्दों में, समाज मानवीय अंत:क्रियाओं (Interaction) के प्रक्रम की एक प्रणाली है।

मानव की कुछ नैसर्गिक तथा अर्जित आवश्यकताएँ, जैसे - काम, क्षुधा, सुरक्षा आदि होती हैं पर वह इनकी पूर्ति स्वयं करने में सक्षम नहीं होता। इन आवश्यकताओं की सम्यक् संतुष्टि के लिये लंबे समय में मनुष्य ने एक समष्टिगत व्यवस्था (Holistic System) को विकसित किया है जिसे समाज कहा गया है। यह व्यक्तियों का ऐसा संकलन है जिसमें वे निश्चित संबंध और विशिष्ट व्यवहार द्वारा एक-दूसरे से बँधे होते हैं। समाज व्यक्तियों की वह संगठित व्यवस्था भी है जहाँ विभिन्न कार्यों के लिये विभिन्न मानदंडों (Norms) को विकसित किया जाता है और कुछ व्यवहारों को स्वीकार्य और कुछ को निषिद्ध किया जाता है।

समाज में विभिन्न कर्त्ताओं का समावेश होता है जिनमें परस्पर अंत:क्रिया (interaction) होती रहती है। प्रत्येक कर्त्ता अधिकतम संतुष्टि की ओर उन्मुख होता है। इसी अंत:क्रिया की मदद से समाज के अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाया जाता है। अंत:क्रिया की प्रक्रिया को संयोजक तत्त्व संतुलित करते हैं तथा वियोजक तत्त्व सामाजिक संतुलन में व्यवधान उत्पन्न करते हैं। वियोजक तत्त्वों के नियंत्रण हेतु संस्थाकरण द्वारा कर्त्ताओं के संबंधों तथा क्रियाओं का समायोजन होता है जिससे पारस्परिक सहयोग में वृद्धि होती है और अंतर्विरोधों का शमन होता है। सामाजिक प्रणाली में व्यक्ति को कार्य और पद तथा दंड और पुरस्कार सामान्य नियमों और स्वीकृत मानदंडों के आधार पर प्रदान किये जाते हैं। सामाजिक दंड के इसी भय से सामान्यत: व्यक्ति समाज में प्रचलित मान्य परंपराओं की उपेक्षा नहीं कर पाता और वह उनसे समायोजन का हर संभव प्रयास करता है।

चूँकि समाज व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों की एक व्यवस्था है, इसलिये इसका कोई मूर्त स्वरूप नहीं होता। इसकी अवधारणा अनुभूतिमूलक है। समाज में पारस्परिक सहयोग एवं संबंधों का आधार सामूहिक आचरण है जो समाज द्वारा निर्धारित और निर्देशित होता है। समाज में सामाजिक मान्यताओं के संबंध में सहमति अनिवार्य होती है। यह सहमति पारस्परिक विमर्श तथा सामाजिक प्रतीकों को स्वीकारने पर आधारित होती है तथा असहमति की स्थिति संघर्षों को जन्म देती है जो समाज के विघटन का कारण बनती है। यह असहमति उस स्थिति में पैदा होती है जब व्यक्ति सामूहिकता के साथ पहचान बनाने में असफल रहता है। समाज और उसके सामाजिक संगठन का स्वरूप कभी शाश्वत नहीं बना रहता। मानव मन और समूह मन की गतिशीलता उसे निरंतर प्रभावित करती रहती है जिसके परिणामस्वरूप समाज परिवर्तनशील होता है। उसकी यह गतिशीलता ही उसके विकास का मूल है। सामाजिक विकास परिवर्तन की एक चिरंतन प्रक्रिया है जो सदस्यों की आकांक्षाओं और पुनर्निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में उन्मुख रहती है।

अध्याय
3

व्यक्ति और समाज (Individual and Society)

समाजशास्त्र में व्यक्ति और समाज के संबंधों के बारे में गंभीर चिंतन किया गया है। यह चिंतन हमें धर्म, पुरुषार्थ, वर्ण, आश्रम, संस्कार, विवाह, परिवार, नातेदारी आदि के बारे में व्यक्त विचारों में देखने को मिलता है। समाजशास्त्र में जहाँ एक ओर सुदृढ़ व्यक्तित्व के निर्माण की बात कही गई है, वहीं दूसरी ओर व्यवस्थित समाज-रचना के लिये व्यक्ति के योगदान का भी उल्लेख किया गया है। समाज में एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तथा एक समूह से दूसरे समूह के बीच अनेक प्रकार के संबंध पाए जाते हैं। इनमें पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई, भाई-बहिन तथा मित्र-शत्रु आदि प्रकार के अन्य असंख्य संबंध पाए जाते हैं। इन संबंधों के अभाव में समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। इन संबंधों की स्थापना के लिये सामाजिक अंत:क्रिया का होना आवश्यक है। अत: व्यक्ति एवं समाज के मध्य संबंधों का आधार सामाजिक अंत:क्रिया ही है।

3.1 सामाजिक अंत:क्रियाएँ *(Social Interactions)*

जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक-दूसरे के संपर्क में आते हैं तब अंत:क्रिया शुरू हो जाती है। अंत:क्रिया द्वारा व्यक्तियों के मध्य विचारों या भावों का आदान-प्रदान होता है और वे एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसे ही अंत:क्रिया कहते हैं। अंत:क्रिया में एक व्यक्ति द्वारा की जाने वाली क्रिया दूसरे के लिये उत्तेजना के रूप में कार्य करती है और दूसरा उस क्रिया का विशेष अर्थ लगाकर प्रत्युत्तर के रूप में जो क्रिया करता है, उसे अनुक्रिया कहते हैं। इस प्रकार अंत:क्रिया के लिये उत्तेजना और अनुक्रिया का होना आवश्यक है। प्रो. ग्रीन के अनुसार, "व्यक्ति और समूह अपनी समस्याओं के समाधान तथा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एक-दूसरे पर जो पारस्परिक प्रभाव डालते हैं, उन्हीं पारस्परिक प्रभावों को सामाजिक अंत:क्रिया कहते हैं।"

व्यक्ति और समाज के मध्य संबंध *(The Relationship between Individual and Society)*

व्यक्ति और समाज के मध्य संबंध को मुख्य तीन आधार पर देखा जा सकता है-

- **मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणि है:** मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक प्राणि है। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह अकेले नहीं रह सकता। ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसका बिल्कुल निर्जन में संतुलित विकास हुआ हो।

  मनुष्य जब समाज में रहता है और अपने साथियों के साथ समाज की गतिविधियों में भाग लेता है, तभी उसका विकास होता है। सामाजिक बंधनों से मुक्त होकर जंगलों में रहने वाले तथा फल खाकर अपनी भूख मिटाने वाले तपस्वियों की कथाओं का कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं है। यहाँ तक कि सांसारिक जीवन से विरक्त होने वाले साधु भी वनों में अन्य साधुओं के साथ रहते हैं। इन सब बातों से पता लगता है कि समाज मानव-संरचना की कुछ बड़ी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं को पूर्ण करता है। समाज कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो अचानक ही मनुष्य के साथ जोड़ दी गई है या ज़बर्दस्ती मनुष्य पर लाद दी गई है। वस्तुत: मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक है।

- **आवश्यकता मनुष्य को सामाजिक बनाती है:** मनुष्य अपनी आवश्यकताओं से बाध्य होकर समाज में रहता है। यदि वह अपने साथियों की सहायता न ले तो उसकी बहुत-सी ज़रूरतें पूर्ण ही नहीं हो सकती हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्त्री-पुरुष के बीच स्थापित सामाजिक संबंध की उपज है। बच्चा माँ-बाप की देखभाल में पलता है और उनके साथ रहकर ही जीवन का पहला पाठ पढ़ता है। यदि नवजात शिशु को समाज का संरक्षण तथा उसकी देखभाल न मिले तो वह एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता। ऐसे किसी शिशु का प्रमाणीकृत उदाहरण नहीं मिलता जो स्वयं जीवित रहा हो या भेड़ियों, लंगूरों या दूसरे पशुओं ने उसे पाला हो। मानव शिशु इतना निरीह है कि उसके लिये समाज का संरक्षण अनिवार्य है। हम दूसरों के साथ रहकर तथा उनकी सहायता से ही अपनी भोजन, आवास तथा कपड़े जैसी ज़रूरतें पूरी करते हैं।

अध्याय
4

हिंदू सामाजिक संगठन (Hindu Social Organization)

भारत संस्कृति एवं परंपराओं का देश है। विश्व में आज भी भारतीय संस्कृति एवं परंपराओं की विशिष्ट पहचान है। जबकि रोम, मिश्र तथा बेबीलोनिया की विश्व प्रसिद्ध संस्कृतियाँ इतिहास बनकर रह गईं। भारतीय संस्कृति की इस विशिष्टता का प्रमुख कारक भारतीय/हिंदू सामाजिक संगठन है। समाज एक अखंड व्यवस्था नहीं है। यह अनेक इकाइयों के सहयोग से बनती है। समाज में पाई जाने वाली प्रत्येक इकाई का समाज में एक निश्चित कार्य होता है। उदाहरणार्थ- जाति प्रथा या संयुक्त परिवार का भारतीय समाज में एक निश्चित स्थान तथा कार्य निर्धारित है। इन निश्चित कार्यों और निश्चित स्थान के आधार पर जाति प्रथा और संयुक्त परिवार का किसी-न-किसी रूप में एक-दूसरे से संबंध होता है और इसके फलस्वरूप उनका एक संगठित व संतुलित रूप प्रकट होता है। इसी को 'सामाजिक संगठन' कहते है। दूसरे शब्दों में, सामाजिक संगठन वह स्थिति है, जिसमें समाज की विभिन्न इकाइयाँ अपने-अपने कार्यों के आधार पर एक-दूसरे से संबंध हो जाने के फलस्वरूप एक संतुलित स्थिति को उत्पन्न करती है।

भारतीय/हिंदू सामाजिक संगठन का अर्थ भारतीय समाज में पाई जाने वाली उस संतुलित या व्यवस्थित स्थिति से है, जो इस समाज की विभिन्न इकाइयों के अपने-अपने स्थान पर रहते हुए पूर्व निश्चित कार्यों को करने के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। इस दृष्टिकोण से भारतीय/हिंदू सामाजिक संगठन उस व्यवस्था की ओर संकेत करता है, जिसके अंतर्गत भारतीय जीवन के स्थापित तथा मान्य उद्देश्यों और आदर्शों की प्राप्ति संभव होती है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये भारतीय समाज में विभिन्न व्यवस्थाओं को प्रस्थापित किया गया है, जैसे वर्ण व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था, धर्म, कर्म, संयुक्त परिवार-व्यवस्था, जाति व्यवस्था आदि। इन उप-व्यवस्थाओं में वर्ण-व्यवस्था भारतीय सामाजिक संगठन की केंद्रीय धुरी है, क्योंकि इसके द्व ारा न केवल समाज को कुछ निश्चित वर्णों में बाँटा गया है बल्कि सामाजिक व्यवस्था व कल्याण को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक वर्ण के कर्त्तव्य एवं कर्मों को भी निश्चित किया गया है। इस प्रकार जहाँ एक ओर वर्ण-व्यवस्था समाज में सरल श्रम-विभाजन की व्यवस्था करती है, वहीं दूसरी ओर आश्रम-व्यवस्था द्वारा जीवन को चार स्तरों में बाँटकर और प्रत्येक स्तर पर कर्त्तव्यों के पालन का निर्देश देकर मानव-जीवन को सुनियोजित किया गया है। इसी प्रकार धर्म एवं कर्म की भारतीय समाज के संगठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ये सभी भारतीय समाज के प्रमुख आधार हैं और इन सबका सम्मिलित रूप भारतीय सामाजिक संगठन को विशिष्टता प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

उद्देश्य

इसका प्रमुख उद्देश्य भारतीय समाज के आधार: वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, धर्म एवं पुरुषार्थ तथा समाज में उनके महत्त्व को समझना है, जिसके पश्चात् आप वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, धर्म एवं पुरुषार्थ की अवधारणा को समझ सकेंगे तथा पुरुषार्थ, कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धांत का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

भारतीय सामाजिक संगठन के प्रमुख आधार या तत्त्व

भारतीय समाज की संस्कृति तथा समाज का आधार अत्यधिक प्राचीन है। अनेकोनेक भारतीय सामाजिक संस्थाओं का विकास वैदिक युग में ही हो गया था। वैदिक युग में वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, विवाह, धर्म, कर्म आदि का उद्भव एवं विकास हुआ, अपितु भाारतीय समाज को आधार प्रदान किया। समाज में श्रम विभाजन हेतु चार वर्णों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की रचना की गई। इसी प्रकार पुरुषार्थों की प्राप्ति हेतु मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानकर चार आश्रमों-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास में विभाजित किया गया। धर्म और कर्म को भी भारतीय संस्कृति में प्रमुख स्थान दिया गया है। धर्म और कर्म के अनुसार कार्य करने पर ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, जो मानव जीवन का प्रमुख उद्देश्य है। इस प्रकार आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, धर्म और पुरुषार्थ भारतीय समाज को न केवल आधार प्रदान करते हैं अपितु दिशा-निर्देशित भी करते हैं।

अध्याय
5

सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification)

सामाजिक स्तरीकरण एक सार्वभौमिक प्रघटना है। कोई भी मानव समाज इससे वंचित नहीं है, यद्यपि स्तरीकरण विभिन्न रूपों और अंशों में पाया जाता है। किसी भी समाज में व्यक्ति, पद और समूह विशिष्ट मानकों और कसौटियों के आधार पर विभेदीकृत किये जाते हैं। वे मानक और कसौटियाँ, जिनके आधार पर लोग विभेदीकृत किये जाते हैं, एक समयावधि में उभरकर आती हैं। एक समाज की प्रकृति, उसकी संस्कृति, अर्थव्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था के आधार पर स्तरीकरण सरल या कम विस्तृत या जटिल और अधिक विस्तृत होता है। किसी भी समाज के स्तरीकरण में विचारणीय बिंदु एक व्यक्ति विशेष या उसके परिवार या समुदाय की विभिन्न अनुपातों में उपलब्धियाँ हो सकती हैं। अत: एक व्यक्ति, एक परिवार और एक समूह या तीनों विभिन्न संदर्भों और परिस्थितियों में या एक-दूसरे के संग, एक समाज में श्रेणीकरण की इकाइयाँ हो सकती हैं।

वह प्रक्रिया जिसके द्वारा मनुष्यों और समूहों को प्रस्थिति के पदानुक्रम में न्यूनाधिक स्थायी रूप से श्रेणीबद्ध किया जाता है, स्तरीकरण कहलाती है।

रेमंड मुरे (Raymond Murray) के अनुसार, "सामाजिक स्तरीकरण समाज की 'उच्च' और 'निम्न' सामाजिक इकाइयों में समांतर विभाजन है।"

प्रत्येक समाज पृथक् समूहों में विभक्त है। प्राचीनतम समाजों में भी किसी न किसी प्रकार का सामाजिक स्तरीकरण था। जैसा कि सोरोकिन (Sorokin) ने कहा है- "अस्तरीकृत समाज, जिसके सदस्यों में वास्तविक समानता हो, केवल एक कल्पना है, जो मानव-इतिहास में कभी साकार नहीं हुई।"

गिलबर्ट (Gilbert) के अनुसार, "सामाजिक स्तरीकरण का आशय समाज का विभिन्न ऐसी स्थायी श्रेणियों और समूहों में विभाजन है, जो उच्चता और अधीनता के संबंधों से परस्पर-संबद्ध होते हैं।"

टालकाट पारसंस के शब्दों में, "सामाजिक स्तरीकरण से अभिप्राय किसी सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तियों का ऊँचे और नीचे के पदानुक्रम में विभाजन है।"

कुर्ट बी.मेयर (Curt B. Mayer) के अनुसार, "सामाजिक स्तरीकरण विभेदीकरण की एक विधि है, जिसमें सामाजिक पदों का वंशानुक्रम निहित होता है तथा इन पदों के स्वामी को एक-दूसरे के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण सामाजिक बातों में श्रेष्ठ, सामान्यत: निम्न समझा जाता है।"

प्रस्थिति की असमानता, सामाजिक स्तरीकरण की प्रमुख विशेषता है। जहाँ सामाजिक स्तरीकरण होगा, वहाँ सामाजिक असमानता होगी। यद्यपि मानव ने सदैव ऐसे संसार का स्वप्न देखा है, जिसमें प्रस्थिति का भेदभाव न हो और सभी व्यक्ति समान हों। फिर भी यह कटु सत्य है कि समाज विभिन्न पदों को विभिन्न अधिकार एवं सुविधाएँ प्रदान करता है। कुछ व्यक्तियों और समूहों को उनके द्वारा भोगे जाने वाली सुविधाओं और विशेषाधिकारों के आधार दूसरों की अपेक्षा उच्च माना जाता है।

स्तरीकरण से अंत:क्रिया सीमित हो जाती है, जिसके फलस्वरूप विभिन्न श्रेणियों के बीच अंत:क्रिया की अपेक्षा किसी विशेष श्रेणी के मनुष्यों के बीच अंत:क्रिया अधिक हो जाती है। किसी विशिष्ट स्तरीकरण प्रणाली में कुछ विशेष प्रकार की अंत:क्रिया अन्य की अपेक्षा अधिक प्रतिबंधित हो सकती है।

5.1 जाति *(Caste)*

प्रत्येक समाज में प्रत्येक युग, काल एवं समय में किसी-न-किसी आधार पर स्तरीकरण (Stratification), असमानता (Inequality) तथा विभेदीकरण (Differentiation) अवश्य ही पाया जाता रहा है। जहाँ तक भारतीय समाज का संबंध है, ऐतिहासिक एवं पौराणिक धर्मग्रंथ, वैदिक साहित्य, सूत्र-साहित्य, धर्मशास्त्र महाकाव्य तथा पुराण, बौद्ध और जैन साहित्य

अध्याय
6

सामाजिक प्रक्रियाएँ (Social Processes)

सामाजिक प्रक्रिया का एक विस्तृत आशय होता है। यह उन घटनाओं से मिलकर बनती है जो भूतकाल में घटित हुई हैं। यह परंपराओं, रूढ़ियों, नैतिक आदर्शों तथा मूल प्रवृत्तियों पर भी आधारित होती है। ये प्रकृति से जटिल और अचेतन हो सकती हैं, जबकि सामाजिक अंत:क्रियाएँ मूर्त, परस्पर आदान-प्रदान पर आधारित, वास्तविक, तथा सामाजिक संपर्क पर निर्भर करती है।

सामाजिक प्रक्रिया मानव-समूह के जीवन में विभिन्न परिवर्तनों से संबंधित होती है। यह अंत:क्रिया की प्रकृति पर अवलंबित होती है जिसमें ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक पहलू सम्मिलित हो सकते हैं। अंत:क्रिया का संबंध एक अन्य क्रिया की अनुक्रिया में किये गए कार्य या क्रिया से होता है। जब अंत:क्रिया की पुनरावृत्ति होती है तो यह एक सामाजिक प्रक्रिया बन जाती है। अत: कहा जा सकता है कि सामाजिक अंत:क्रिया तथा सामाजिक प्रक्रियाएँ अंत: संबंधित होती हैं।

जब एक पति-पत्नी प्रेम, आत्मीयता और सहानुभूति के कारण परस्पर सहायता करते हैं तो यह क्रिया सहयोग का स्वरूप धारण कर लेती है तथा वह एक सामाजिक प्रक्रिया हो जाती है।

इस प्रकार "सामाजिक प्रक्रियाओं का अर्थ होता है, व्यक्तियों या समूहों के मध्य विभिन्न प्रकार' की अंतर्क्रिया, जिसमें सहयोग संघर्ष, सामाजिक विभेदन तथा एकीकरण विकास, बंधन एवं अवनति भी शामिल हैं।"

दूसरे शब्दों में "सामाजिक प्रक्रिया वह तरीका या पद्धति है, जिसमें एक समूह के सदस्यों के संबंध जब एक बार परस्पर प्रगाढ़ हो जाते हैं तो वे विशिष्ट एवं पृथक् पहचान एवं विशेषता धारण कर लेते हैं।"

बीसंज तथा बीसंज ने लिखा है "अंत:क्रिया के विभिन्न स्वरूपों को ही सामाजिक प्रक्रिया कहते हैं।"

गिलिन और गिलिन ने सामाजिक प्रक्रिया के तीन प्रकार बताए हैं-

- सामान्य सामाजिक प्रक्रिया,
- सहयोगी या सहगामी सामाजिक प्रक्रिया,
- असहयोगी या असहगामी सामाजिक प्रक्रिया,

सहयोगी सामाजिक प्रक्रिया में सहयोग, व्यवस्थापन सात्मीकरण, पर-संस्कृतिकरण शामिल है जबकि असहयोगी सामाजिक प्रक्रिया में प्रतिस्पर्द्धा, संघर्ष आदि शामिल हैं।

6.1 सामाजिक अंत:क्रिया *(Social Interaction)*

दो या दो से अधिक व्यक्ति एक-दूसरे से मिलते हैं साथ ही नमस्ते, प्रणाम, भाव-विचारों का आदान प्रदान करते हैं तो उनमें सामाजिक अंत:क्रिया होने लगती है। अनुक्रिया के साथ-ही-साथ उत्तेजना का होना अंत:क्रिया कहलाता है। सामाजिक अंत:क्रिया, जो सामाजिक प्रक्रिया से अलग पहचान रखती है, मूर्त, वास्तविक तथा वार्तालाप, सामाजिक संपर्क आपसी संबंधों पर आधारित होती है। आपसी प्रभावों की एक प्रणाली में एक साथ बंधे हुए एक सामाजिक सदस्यों के परस्पर अंत:क्रिया सामाजिक अंत:क्रिया कहलाती हैं। अधिकतर ये समकालीक परिस्थितियों से संबंधित होते हैं और इस तरह से इसका आकार ठोस तथा वास्तविक समझे जाते हैं।

इस भाँति सामाजिक अंत:क्रिया एक जटिल प्रक्रिया है और यह मानव-अंत:क्रिया के तीन बड़े स्वरूपों-सहयोग, प्रतिस्पर्द्धा तथा संघर्ष से मिलकर बनती है।

डासन तथा गेटिन के अनुसार "सामाजिक अंत:क्रिया, एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य एक-दूसरे के मस्तिष्क में प्रविष्ट करता है।"

अध्याय
7

सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन (Social Control and Social Change)

सामाजिक नियंत्रण दबाव का वह प्रतिमान है, जिसे समाज के द्वारा व्यवस्था बनाए रखने और नियमों को स्थापित रखने के लिये उपयोग में लाया जाता है। सर्वप्रथम सामाजिक नियंत्रण का विचार ई.ए.रॉस द्वारा 1901 में दिया गया था। सामाजिक नियंत्रण को प्रभावी बनाने के लिये विभिन्न साधनों तथा अभिकरणों का प्रयोग किया जाता है। साधन एवं अभिकरण को सामान्यत: एक ही अर्थ में समझा जाता है लेकिन दोनों में अंतर है। अभिकरण को हम किसी समूह तथा संगठन के रूप में समझ सकते हैं। इन्हीं के द्वारा समाज में नियंत्रण लागू किया जाता है, जबकि साधन वह विधि या तरीका है जिसके द्वारा अभिकरण (Agency) आदेशों को समाज में लागू करती है। इस प्रकार अभिकरण और साधन दोनों एक साथ मिलकर सामाजिक नियंत्रण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

7.1 सामाजिक नियंत्रण के साधन एवं अभिकरण *(Sources and Agencies of Social Control)*

सामाजिक नियंत्रण *(Social Control)*

सामाजिक नियंत्रण समाज द्वारा शीघ्र समग्र रूप से समूह-कल्याण हेतु अपने सदस्यों के ऊपर आरोपित प्रभाव है, यह ऐसी विधि है जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था स्वयं को संयोजित एवं स्थिर रखती है। यह ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा कोई समुदाय अथवा समूह समष्टि बनकर क्रियाशील होता है एवं परिवर्तनशील संतुलन को बनाए रखता है।

- ''सामाजिक नियंत्रण उन विधियों का योग है जिनके द्वारा समाज व्यवस्था को स्थिर रखने हेतु मानवीय व्यवहार को प्रभावित करने का प्रयत्न करता है।'' **-मानहीम**
- "सामाजिक नियंत्रण जो एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाया जाता है एवं सामाजिक संगठन को निर्मित एवं संरक्षित किया जाता है।'' **-लैंडिस**
- "सामाजिक नियंत्रण ऐसा सामाजिक आचरण है जो व्यक्तियों अथवा समूहों को स्थापित अथवा वांछित आदर्श-नियमों के अनुकूल व्यवहार करने के लिये प्रभावित करते हैं।" **-लुंडबर्ग एवं अन्य**

सामाजिक नियंत्रण की परिभाषा की निम्नलिखित तीन विशेषताओं पर ध्यान देना आवश्यक है-

प्रथम, सामाजिक नियंत्रण एक प्रभाव है। यह प्रभाव जनमत, दमन, सामाजिक सुझाव, धर्म, तर्क अथवा अन्य किसी विधि से डाला जा सकता है।

द्वितीय, यह प्रभाव समाज द्वारा डाला जा सकता है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति की अपेक्षा समूह व्यक्ति के ऊपर प्रभाव डालने में अधिक समर्थ है। ये समूह परिवार, चर्च, राज्य, क्लब, स्कूल, श्रमिक-संघ आदि हो सकते हैं। परंतु प्रभाव की प्रभाविता विभिन्न तत्त्वों पर आधारित होते हैं। कभी-कभी परिवार राज्य की अपेक्षा अधिक प्रभाव डाल सकता है। अथवा कभी-कभी इसके विपरीत हो सकता है।

तृतीय, प्रभाव का प्रयोग समष्टि रूप में समूह-कल्याण को उन्नत करने हेतु किया जाता है। व्यक्ति को दूसरों के हितार्थ न कि स्वयं निजी हितार्थ कार्य करने के लिये प्रभावित किया जाता है।

सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता *(Need of Social Control)*

सामाजिक सुदृढ़ता समाज के अस्तित्व के लिये अनिवार्य है। कोई भी दो व्यक्ति अपने स्वभाव, अपनी मनोवृत्तियों एवं रुचियों में समान नहीं होते हैं। प्रत्येक मनुष्य का एक अलग व्यक्तित्व होता है। व्यक्तियों में सांस्कृतिक अंतर होते हैं। कुछ मूर्तिपूजा करते हैं तो दूसरे नहीं करते। कुछ माँसाहारी हैं तो अन्य शाकाहारी। कुछ परंपरावादी हैं तो अन्य आधुनिक। कुछ

अध्याय
8

भारतीय सामाजिक समस्याएँ (Indian Social Problems)

वर्तमान समय में भारत में अनेक सामाजिक समस्याएँ पाई जाती हैं। यद्यपि भारतवर्ष एक स्वतंत्र गणराज्य है, जिसने धर्म-निरपेक्ष, प्रजातंत्र अथवा आर्थिक समानता के प्रगतिशील मूल्यों को स्वीकार किया है, परंतु यहाँ निर्धनता पाई जाती है, गरीब-अमीर के बीच एक बहुत बड़ी खाई दिखलाई पड़ती है। यहाँ धर्म, भाषा, जाति-प्रजाति तथा क्षेत्रीयता के आधार पर अनेक भेदभाव पाए जाते हैं। व्यक्ति-व्यक्ति में सामाजिक और आर्थिक आधार पर ऊँच-नीच का एक संस्तरण पाया जाता है, जिनमें जातिवाद, अस्पृश्यता, भाषावाद, प्रांतीयता, सांप्रदायिकता, युवाविक्षोभ तथा बेकारी आदि शामिल हैं जो समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। यहाँ जनसंख्या की बढ़ोतरी भी तेज़ी के साथ होती जा रही है। निरक्षता, निम्न जीवन-स्तर, शराबखोरी, जुआ, वेश्यावृत्ति और राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार की समस्याओं का भी देशवासियों को सामना करना पड़ रहा है। यहाँ औद्योगीकरण एवं नगरीकरण से संबंधित समस्याएँ भी गंभीर रूप धारण करती जा रही हैं।

8.1 सामाजिक समस्या: अर्थ एवं परिभाषा *(Social Problem: Meaning and Definition)*

सामाजिक समस्या का अभिप्राय ऐसी समस्या से है, जिससे समाज के अधिकांश लोग प्रभावित हों और इसे दूर करने के लिये जागरूक होकर प्रयास करें। सामाजिक समस्या क्या है? यानी सामाजिक समस्या को परिभाषित करना यद्यपि कठिन अवश्य है, किंतु फिर भी बहुत से विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इसे परिभाषित किया है।

रिचर्ड वास्कीन ने सामाजिक समस्या की परिभाषा देते हुए लिखा है कि- "सामाजिक समस्या वह सामाजिक परिस्थिति है, जो समाज के काफी संख्या में क्षमताशील, समर्थ एवं सक्षम अलोचकों का ध्यान खींचती है तथा उन्हें यह आभास दिलाती है कि परिस्थिति के उपचार के लिये पुनर्व्यवस्थापन तथा किसी सामाजिक एवं सामूहिक क्रिया की आवश्यकता है।"

डब्ल्यू वेलेस वीवर लिखते हैं "सामाजिक समस्या एक ऐसी दशा है, जो चिंता, तनाव, संघर्ष या नैराश्य उत्पन्न करती है और आवश्यकता की पूर्ति में बाधा डालती है।"

क्लेरेंस मार्शकेस के मतानुसार, "सामाजिक समस्या का तात्पर्य किसी ऐसी सामाजिक परिस्थिति से है, जो एक समाज में काफी संख्या में योग्य अवलोकनकर्त्ताओं के ध्यान को आकर्षित करती है और सामाजिक, अर्थात् सामूहिक, किसी एक अथवा दूसरे किस्म की क्रिया के द्वारा पुनः सामंजस्य या हल के लिये उन्हें आग्रह करती है।"

रिचर्ड सी. फुल्लर तथा **रिचर्ड मायर्स** के मत में "व्यवहार के जिन प्रतिमानों या परिस्थितियों को किसी समय समाज के बहुत से सदस्य आपत्तिजनक अथवा अवांछनीय मानते हों, वे ही सामाजिक समस्याएँ हैं। इन सदस्यों की यह मान्यता रहती है कि इन समस्याओं को हल करने और उनके कार्यक्षेत्र को कम करने के लिये सुधारनीतियों, कार्यक्रमों एवं सेवाओं की आवश्यकता होती है।"

शेपर्ड व बार्स के मतानुसार- "एक सामाजिक समस्या समाज की कोई भी ऐसी सामाजिक दशा है, जिसे समाज के एक बहुत बड़े भाग या शक्तिशाली भाग द्वारा अवांछनीय और ध्यान देने योग्य समझा जाता है।"

वेनबर्ग के अनुसार, "सामाजिक समस्याएँ ऐसी व्यावहारिक संरूप और स्थितियाँ होती हैं जो सामाजिक प्रक्रियाओं से उत्पन्न होती हैं और समाज के कई सदस्य इनको इतना आपत्तिजनक और अवांछनीय मानते हैं कि उन्हें विश्वास हो जाता है कि उनका सामना करने के लिये सुधारक नीतियाँ, कार्यक्रम और सेवाएँ आवश्यक हैं।"

लुंडबर्ग के अनुसार- "सामाजिक समस्या समाज की कोई भी ऐसी सामाजिक दशा है, जिसे समाज के एक बहुत बड़े भाग या शक्तिशाली भाग द्वारा अवांछनीय और ध्यान देने योग्य समझा जाता है।"

अध्याय
9

सामाजिक शोध एवं प्रविधियाँ (Social Research and Techniques)

सामाजिक शोध का अर्थ जानने से पहले अनुसंधान किसे कहते हैं इसके बारे में जानने का प्रयास करते हैं। शोध शब्द अंग्रेज़ी के 'Research' शब्द से बना है। इस शब्द में दो भाग है, पहला 'Re' तथा दूसरा 'Search' है। Re का अर्थ 'पुनः' जबकि 'Search' का शाब्दिक अर्थ है 'पुनः खोज करना' है। सामाजिक शोध का अर्थ सामाजिक घटनाओं या तथ्यों के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त करना, प्राप्त ज्ञान में वृद्धि करना अथवा जिन सिद्धांतों एवं नियमों का निर्माण किया गया है उनमें किसी प्रकार का संशोधन करना है किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना आदि के संबंध में सावधानीपूर्वक खोज करना तथा तथ्यों या सिद्धांतों का पता लगाने हेतु विषय-सामग्री की जाँच-पड़ताल करना शोध कहलाता है।

जब सामाजिक घटनाओं के संबंध में अनुसंधान किया जाता है तो उसे सामाजिक अनुसंधान कहते हैं। विभिन्न समाज वैज्ञानिकों ने सामाजिक शोध को निम्न रूपों में पारिभाषित किया है-

- **पी.वी.यंग (P.V.Young):** "सामाजिक अनुसंधान तार्किक तथा क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों के अन्वेषण अथवा पुराने तथ्यों का परीक्षण तथा सत्यापन उनके क्रमों, पारस्परिक संबंधों, कार्य-कारण की व्याख्या एवं उनको संचालित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण करने के उद्देश्य से की गई एक वैज्ञानिक योजना है।''
- **बोगार्डस (Bogardus):** "साहचर्य में अर्थात् एक साथ रहने वाले लोगों के जीवन में क्रियाशील अंतर्निहित प्रक्रियाओं की खोज ही सामाजिक अनुसंधान है।"
- **मोज़र (Moser):** "सामाजिक घटनाओं अथवा समस्याओं के बारे में नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिये एक व्यवस्थित अनुसंधान कार्य को ही हम सामाजिक अनुसंधान कहते हैं।"
- उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक शोध सामाजिक संबंधों, घटनाओं तथा तथ्यों से संबंधित है जिसमें इनकी व्याख्या, कार्य-कारण संबंधों की खोज, नवीन तथ्यों की खोज तथा पुराने तथ्यों की प्रामाणिकता की जाँच वैज्ञानिक ढंग से करने का प्रयास किया जाता है। अतः सामाजिक शोध एक व्यवस्थित पद्धति है, जिसमें सामाजिक तथ्यों की वास्तविकता, उनके कार्य-कारण संबंधों एवं प्रक्रियाओं के बारे में क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। जब हम कहते हैं कि शोध से अभिप्राय वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्राप्त ज्ञान से है, तो हमारा अभिप्राय शोध में निरीक्षण, परीक्षण, तथ्यों के संकलन, वर्गीकरण तथा सामान्यीकरण के आधार पर वस्तुस्थिति की तार्किक ढंग से विवेचना करने से है।

9.1 सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य *(Objective of Social Research)*

कोई भी कार्य अकारण अर्थात् बिना किसी प्रयोजन के नहीं होता। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक कार्य के मूल में कोई-न-कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लक्ष्य अवश्य ही होता है। यही लक्ष्य, लक्ष्य या उद्देश्य व्यक्ति को प्रेरित करता है। जिस प्रकार मूर्तिकार को मूर्ति निर्माण करते समय एक विशिष्ट प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है, जिस प्रकार किसी लेखक को पुस्तक की रचना करते समय आनन्द प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार शोध के कार्य में संलग्न शोधकर्त्ता को आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है। बिना उद्देश्य के शोध कार्य निरुत्साहजनक होता है। यंग (P.V. Young) ने सामाजिक शोध के उद्देश्य की महत्ता पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है "सामाजिक अनुसंधान का लक्ष्य अन्वेषित सामाजिक घटना का स्पष्टीकरण करना, संदेहों को स्पष्ट करना, सामाजिक जीवन की भ्रामक धारणाओं से संबंधित तथ्यों को परिवर्तित अर्थात् संशोधित करना है।"

सेलटिज, मेरी जहोदा तथा उसके सहयोगी "सामाजिक शोध के दो प्रमुख लक्ष्यों की विस्तृत व्याख्या की है। उक्त विद्वानों द्वारा बताए गए सामाजिक शोध के उद्देश्य की विवेचना इस प्रकार कर सकते हैं-

प्रथमः बौद्धिक उद्देश्य (Intellectual Objects) या सैद्धांतिक उद्देश्य (Theoretical Objects)

द्वितीयः व्यावहारिक उद्देश्य (Applied Objects)

अध्याय
10

तथ्य संकलन की प्रविधियाँ एवं उपकरण (Tools and Techniques of Data Collection)

किसी भी सर्वेक्षण, अनुसंधान या शोध के लिये तथ्यों को संकलित करना बहुत ही आवश्यक है। जब तक शोध विषय से संबंधित तथ्यों को निश्चित प्रविधियों के द्वारा संकलित नहीं किया जाएगा, तब तक शोध के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते हैं और न ही किसी प्रकार के नियम का प्रतिपादन किया जा सकता है। तथ्य संकलन अनुसंधान की एक महत्त्वपूर्ण अवस्था है। अनुसंधान हेतु प्रयुक्त किये जाने वाले तथ्यों को अध्ययनकर्त्ता मनमाने ढंग से एकत्रित नहीं करता है, बल्कि वह विभिन्न उपकरणों एवं प्रविधियों के माध्यम से संकलित करता है। वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये तथ्यों के विश्वसनीय होने के साथ-साथ उनकी प्रविधियाँ एवं उपकरणों का भी विश्वसनीय होना आवश्यक है।

10.1 अवलोकन *(Observation)*

अवलोकन मानव की इन्द्रियजन्य विशेषता है। आँखों से देखने को अवलोकन कहते हैं। यह अति प्राचीनकाल से सामाजिक घटनाओं और सामाजिक समस्याओं के निरीक्षण एवं परीक्षण की महत्त्वपूर्ण पद्धति रही है। मनुष्य स्वभावत: जिज्ञासु प्राणी है। यह जिज्ञासा उसकी मूल प्राकृतिक विशेषता का एक भाग है। जितना ही अधिक वह घटनाओं का निरीक्षण और परीक्षण करता है, उसकी जिज्ञासा उतनी ही बढ़ती जाती है। विज्ञान और अवलोकन एक-दूसरे से अंत:संबंधित हैं।

जहोडा एवं कुक ने लिखा है कि "अवलोकन केवल दैनिक जीवन की ही अत्यधिक व्यापक क्रिया मात्र नहीं है, यह वैज्ञानिक जाँच का भी एक प्राथमिक यंत्र है।"

गुडे एवं हाट के अनुसार, "विज्ञान अवलोकन से प्रारंभ होता है तथा उसे सत्यापन के लिये अंतत: आवश्यक रूप से अवलोकन पर ही पुन: लौट आना पड़ता है, जिज्ञासु प्रकृति होने के कारण सृष्टि के आदिकाल से लेकर आज तक मनुष्य अपने ज्ञान में वृद्धि करने के लिये अवलोकन पद्धति का सहारा लेता रहा है।''

सामाजिक विज्ञान की वह पद्धति, जिसमें घटनाओं का आँखों के माध्यम से निरीक्षण और परीक्षण किया जाता है, अवलोकन के नाम से जानी जाती है। सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में अवलोकन पद्धति का प्रयोग कई विद्वानों ने किया है। जॉन हॉवर्ड ने कैदियों के जीवन तथा जेल की दशाओं का, फ्रेडरिक लीप्ले ने श्रमिक परिवारों पर औद्योगीकरण के प्रभावों तथा चार्ल्स बूथ ने लंदन के श्रमिकों का अध्ययन सहभागी अवलोकन पद्धति द्वारा किया।

परिभाषाएँ (Definitions)

'अवलोकन' अग्रेज़ी भाषा के 'Observation' का हिन्दी रूपांतरण है, जिसका 'अर्थ' निरीक्षण 'प्रेक्षण' देखना और अवलोकन करना है। यह 'आब्ज़र्व' शब्द से बना है, जिसके अर्थ- ध्यान देना (To look with attention), परीक्षा करना (To Remark), अनुष्ठान करना (To Celebrant) आदि हैं। इसका सीधा अर्थ- आँखों से देखना भी है। अवलोकन की विद्वानों ने जो परिभाषाएँ दी हैं, वे इस प्रकार हैं-

- **पी.वी.यंग. के अनुसार:** "अवलोकन नेत्रों के द्वारा किया गया विचारपूर्वक अध्ययन है, जिसका प्रयोग सामूहिक व्यवहार तथा जटिल सामाजिक संस्थाओं के साथ-साथ संपूर्णता का निर्माण करने वाली पृथक्-पृथक् इकाइयों का सूक्ष्म निरीक्षण करने की एक पद्धति के रूप में किया जा सकता है।"
- **मोजर के अनुसार:** "अवलोकन को सुंदर ढंग के वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल की पद्धति कहा जा सकता है। ठोस अर्थों में अवलोकन में कानों तथा वाणी की अपेक्षा आँखों का प्रयोग की स्वतंत्र है।"
- **ऑक्सफोर्ड कन्साइज डिक्सनरी के अनुसार:** "घटनाओं को उसी प्रकार देखना और वर्णन करना आदि जिस प्रकार वे कार्य-कारण अथवा परस्परिक संबधों के अनुसार स्वाभाविक रूप से घटित हैं।"

इस प्रकार "अवलोकन को सामाजिक अनुसंधान की एक पद्धति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें नेत्रों के माध्यम से सामाजिक घटनाओं को देखा और समझा जाता है।"

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी तथा फ्लोचार्ट का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

DrishtiIAS

YouTube Drishti IAS

drishtiias

drishtithevisionfoundation

641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
Phones : 8750187501, 011-47532596